©2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

मुगल शासकों की दक्षिण नीति

निशान्त कुमार
शोधछात्र (इतिहास विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

उत्तर भारत में साम्राज्य को सुदृढ़ करने के बाद दक्षिण की ओर सैन्य अभियान करने की प्रवृत्ति आरम्भ से ही भारतीय शासकों में रही है।[1] इस क्रम में समुद्रगुप्त और अलाउद्दीन खिलजी ने ग्रहण–मोक्ष अनुग्रह की नीति अपनाकर यहाँ से केवल धन लूट और राजस्व प्राप्त करके संतोष अनुभव किया, वहीं मुहम्मद तुगलक, शाहजहाँ, औरंगजेब ने दक्षिण में साम्राज्य विस्तार की नीति अपनाई।[2] दक्षिण में साम्राजय विस्तार के पीछे एक बड़ा कारण यह था कि लगभग पूरा उत्तर भारत उनके अधिकार में था, उत्तर–पश्चिम से वे काबुल, कंधार आदि से आगे बढ़कर मध्य एशियाई राजनीति में उलझना नहीं चाहते थे। वहीं दूसरी ओर दक्कन में अपार धन की उपस्थित और दक्कनी राज्यों के आपसी संघर्ष उन्हें इन क्षेत्रों को आसानी से जीतने के लिए प्रेरित करती थी। इसके अतिरिक्त, तुगलकों की दक्कन विजय तथा उत्तर और दक्षिण के बीच बेहतर संचार व्यवस्था कायम होने के फलस्वरूप दक्कन अभियान करना और प्रांतपतियों के माध्यम से उन पर नियंत्रण रखना अपेक्षाकृत सरल हो गया था। इसलिए दक्कनी क्षेत्रों को विजय करने की नीति अकबर के काल में ही आरम्भ हो गई थी, जिसे शाहजहाँ और अरंगजेब ने और अधिक दृढ़तापूर्वक लागू किया।

बाबर को विंध्य के दक्षिण के क्षेत्र में अभियान का अवकाश नहीं मिला और हुमायूँ की अधिकतम सीमा बंगाल तक रही। इस क्षेत्र में नीति के स्तर पर प्रथम प्रयास हमें अकबर के समय में दिखता है। अकबर ने खानदेश और असीरगढ़ को विजित किया तथा अहमदनगर से बरार का क्षेत्र भी प्राप्त किया तथा बालाघाट के क्षेत्र को भी हम अकबर के अधीन पाते है।[4] अकबर दक्षिणी राज्यों पर प्रत्यक्ष प्रभाव रखना चाहता था। इसकी साम्राज्यवादी नीति यह थी कि उत्तर तथा दक्षिण को प्रभाव में लाया जाए। इसके अतिरिक्त दक्षिणी राज्यों पर अपने प्रभाव को पुष्ट करने के लिए अकबर ने पुर्तगालियों को अपने प्रभावान्तर्गत लाने का प्रयास किया।[5] इसके अतिरिक्त अकबर को दक्षिण भारत में विस्तार का ज्यादा समय नहीं मिला और साथ ही जहाँगीर के विद्रोह ने भी इसके दक्षिण संबंधी नीति को प्रभावित किया। यहाँ ध्यातव्य है कि दक्षिणी राज्य मुगलों के आक्रामक नीति से सशंकित भी थे। इसी का परिणाम था मलिक अंबर और आदिल शाही शासक का गठजोड़, लेकिन यह गठजोड़ अस्थायी सिद्ध हुआ, क्योंकि मलिक अंबर ने अपनी कार्यशैली के कारण आदिलशाही शासक का रूष्ट कर दिया। इस स्थिति में मुगलों को दक्षिण भारत में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने का पुनः अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ यह

महत्वपूर्ण है कि जहाँगीर अकबर के विरासत को प्राप्त करके ही संतुष्ट हो गया, क्योंकि जहाँगीर मुगल सीमा को दक्षिण के विविध मोर्चों पर खोलना नहीं चाहता था।[6] इसलिए उसने आदिलशाही शासक के साथ संधि की नीति अपनाई और इस संधि को विश्वास का आधार देने के लिए बीजापुर के सुल्तान को अपना फरजन्द (पुत्र) कहकर संबोधित किया। इसका एक पक्ष यह भी हो सकता है कि दक्षिणी राज्यों के प्रति सफाविद शासकों की भी अभिरूचि थी, विशेष तौर पर गोलकुंडा के शासक अपने खुतबा में उनका नाम शामिल करते थे और जहाँगीर का शाह अब्बास के साथ जो संबंध था, उसी के मद्देनजर उसने अपनी दक्षिण नीति का आधार तैयार किया। इसके अतिरिक्त जहाँगीर की दक्षिण नीति एक बार फिर से तब नाकामयाब नजर आने लगी, जब शाहजादा खुर्रम ने विद्रोह कर मलिक अंबर के साथ गठजोड कर लिया, पुनःश्च जब तक मलिक अंबर जीवित रहा, तब तक दक्षिण में जहाँगीर की स्थिति अस्थिर बनी रही।

इस पृष्ठभूमि में शाहजहाँ 1627 ई0 में मुगल सिंहासन पर बैठा। शहजादे के रूप में उसने दक्कन पर दो मुगल सैनिक अभियान का नेतृत्व किया था और पिता से विद्रोह के दौरान भी काफी समय दक्कन में बिताया था।[8] इस तरह दक्कन और उसकी राजनीति के बारे में उसे अच्छा खास अनुभव और जानकारी थी। शाहजहाँ अपने इस अनुभव का दक्कन क्षेत्र में मुगल साम्राज्य की सीमा विस्तार के लिए उपयोग करना चाहता था और इस मामले में अपने पूर्ववर्ती अकबर और जहाँगीर से भिन्न विचार रखता था। इसलिए शाहजहाँ ने यह निर्णय लिया कि जब तक अहमदनगर एक स्वतंत्र राज्य के रूप में कायम है, तब तक दक्कन में मुगलों के लिए शांति से रहना असंभव है। अतः शाहजहाँ ने अहमद नगर को कूटनीतिक और सैनिकरूप से मित्र विहीन बनाने की नीति अपनाई। इसलिए उसने बीजापुर को मलिक अंबर के अभियान की कड़वी याद दिलाई कि किस तरह मलिक अंबर ने उसका अपमान किया था और उसकी राजधानी नौरसपुर को आग लगा दी। साथ ही, बीजापुर को यह प्रस्ताव भी भेजा कि यदि वह अहमदनगर के खिलाफ मुगलों के भावी सैनिक अभियान में सहयोग करें तो उसे अहमदनगर का मोटे तौर पर एक हिस्सा दे दिया जाएगा।[9] बीजापुर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

मुगल–बीजापुर की इस मित्रता के फलस्वरूप 1629 ई0 में अहमदनगर के विरूद्ध सैन्य अभियान छेड़ा गया और इसे काफी सफलता भी मिली, किन्तु बीजापुर ने धोखा दिया। उसके सैनिकों ने मुगलों का साथ नहीं दिया और अहमदनगर के निजामशाह से शोलापुर मिलने के वादे के फलस्वरूप, उनका समर्थन करने लगे। इधर, मुगलों ने भी अहमदनगर राज्य में बीजापुर को हिस्सा देने के वादे को भुला दिया। इन सबके फलस्वरूप, मुगलों को अहमदनगर के अंतिम गढ़ परेण्डा पर से अपना घेरा उठाना पड़ा, लेकिन शीघ्र ही अहमदनगर की अंदरूनी राजनीति में परिवर्तन हुआ और मलिक अंबर के बेटे फतह खाँ ने शाहजहाँ के कहने पर निजामशाह को मारकर मुगल बादशाह के नाम से खुतवा पढ़ा और सिक्के ढलवाए।[10]

इस प्रकार, ऊपरी तौर से तो मुगलों का अहमदनगर पर अधिकार हो गया, किंतु बीजापुर और शाहजी भौंसले के नेतृत्व में निजामशाही सरदार इन क्षेत्रों पर धावा बोलते रहे और मुगलों को परेशान करते रहे। इस परिस्थिति से निपटने के लिए शाहजहाँ ने साम–दाम की नीति अपनाई। एक ओर उसने एक विशाल सेना बीजापुर की सीमा के निकट खड़ा कर दिया तो दूसरी ओर उसने बीजापुर के साथ संधि का प्रस्ताव भी भेजा। इसके तहत बीजापुर ने मुगल प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली, मुगलों को हर्जाना देने के लिए राजी हुआ और गोलकुंडा के मामले में दखलअंदाजी न करने को सहमति जताई।

शाहजहाँ ने गोलकुंडा के साथ भी इसी तरह की एक संधि की, जिसमें उसे बीजापुर के आक्रमण की स्थिति में मुगल सम्राट से संरक्षण के बदले में शहंशाह के प्रति वफादार रहने और खुतवा में शाहजहाँ का नाम शामिल करने का वचन देना पड़ा।

बीजापुर और गोलकुंडा के साथ ये संधियाँ शाहजहाँ की राजनीति दूरदर्शिता का परिचायक थी। इससे अब मुगल सम्राट की प्रभुता सुदूर दक्कनी क्षेत्रों तक फैल गई। दूसरी ओर मुगलों की ओर से निश्चित होने के कारण बीजापुर और गोलकुंडा दक्षिण की ओर अपना साम्राज्य विस्तार कर सकते थे।

इस प्रकार शाहजहाँ के काल में काफी हद तक दक्षिणी समस्याओं पर नियंत्रण किया जा सका था और मुगल प्रभुता का विस्तार संभव हो पाया था। किन्तु कालांतर में पुनः शाहजहां ने ही स्वयं बीजापुर एवं गोलकुण्डा की राजनीति में हस्तक्षेप करना प्रारम्भ किया। उसने इन राज्यों से अपने तटस्थ रहने और अपने मातहत राज्य कर्नाटक के इलाकों की गोलकुण्डा एवं बीजापुर के विजय के एवज में मुआवजे की माँग की और इस पर बल देने के लिए औरंगजेब के नेतृत्व में अभियान किया गया। यह अभियान काफी हद तक सफल भी हो चुका था, किन्तु दाराशिकोह के हस्तक्षेप के कारण इस अभियान को रोका गया।[11]

औरंगजब को भी शाहजहाँ की भाँति दक्किनी राजनीति एवं सैन्य अभियान का प्रत्यक्ष अनुभव था। 1636 ई0 की बीजापुर, गोलकुण्डा–मुगल संधि के उल्लंघन से दक्किनी राज्यों में एक ओर जहाँ मुगलों के प्रति अविश्वास की भावना बैठ गई वहीं दूसरी ओर, शिवाजी के नेतृत्व में मराठों की नित बढ़ती शक्ति ने दक्कन में मुगल प्रभाव को कम किया।[12]

औरगंजेब के राज्यकाल तक आते–आते मनसबदारी का आकार बड़ा हो चुका था ओर कुछ हद तक बेरोजगारी की स्थिति उभर रही थी, साथ ही साम्राज्य कई मोर्चों पर वित्तीय दबाव से गुजर रहा था इसके तहत औरंगजेब ने एक तरफ तो खालसा भूमि के विस्तार की नीति अपनाई और दूसरी तरफ जागीरों की कमी को राज्य विस्तार के माध्यम से पूरा करने का प्रयत्न किया और साथ ही राज्य के वित्तीय प्रबंध को भी कई तरह से संशोधित करने का प्रयत्न किया। जैसे दरबारी भव्यता में कटौती, साहित्य, संगीत, इतिहास, कला आदि के क्षेत्र पर होने वाले व्यय की कमी और जजिया का पुनर्रोपण दक्षिण के प्रति उसकी साम्राज्यवादी नीति को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। तात्पर्य कि यह नीति मराठों के द्वारा दी जा रही चुनौती राज्य की आवश्यकता और

शासक की महत्वाकांक्षा का संयुक्त परिणाम थी। इस परिप्रेक्ष्य में औरंगजेब की दक्षिण नीति प्रथमतया तो कामयाब नजर आती है, क्योंकि उसने बीजापुर, गोलकुंडा सहित संगमेश्वर, रायगढ़, सतारा, जिंजी आदि क्षेत्रों में राज्य का विस्तार कर लिया, लेकिन यह मुगल सेना की शक्ति की जीत थी न कि शासक की नीति की। महान शासक अपने संसाधनों का संयोजन इस तरह से करते हैं कि वह राज्य के केन्द्रीय और परिधि क्षेत्रों में सुरक्षा और समृद्धि का आधार तय कर सकें। जबकि औरंगजेब ने परिणामस्वरूप उत्तर व दक्षिण के मुगल सीमा के बीच की दूरी काफी बढ़ गई। परिणामतः दक्षिण में उलझा हुआ शासक उत्तर के ऊपर प्रभावपूर्ण नियंत्रण नहीं रख सका, जिससे उत्तरी क्षेत्र में जाट, बुंदेलों, सतनामी सहित अन्य विद्रोही शक्तियों को अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ।[14] पुनः औरंगजेब मराठों की सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठाधार और उसके राज्य के अंतःसंबंध को समझने में नाकामयाब रहा। एक आंदोलन से अनिवार्य तौर पर जुड़े हुए राज्य की भूमिका मानने के मनोविज्ञान ने न सिर्फ शिवाजी के प्रति उसकी नीति को नाकमयाब किया, बल्कि शंभाजी के काल में भी अपनी इसी नीति को जारी रखने के क्रम में शंभाजी की हत्या कर साहू और उसकी माँ को गिरफ्तार कर लिया जबकि उसे बीजापुर, गोलकुंडा के विजय के बाद एक कमजोर मराठा शासक के साथ संधि करने का अनुकूल अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन उसकी नीतियों का परिणाम यह निकला कि मुगल राज्य बहुत सारे क्षेत्रों में मराठों के आक्रमण का शिकार हो गया।[15] इससे उन सीमा क्षेत्रों में पड़ने वाले जागीरों से राजस्व वसूली और भी दुस्कर हो गई, जो मराठों की सीमा से मिलते थे। परिणामतः गैर जागीर की तुलना में जोरतलब जागीर की मात्रा और भी बढ़ गई। यहाँ स्मरणीय है कि मराठों से निपटने के क्रम में औरंगजेब की धार्मिक क्रियाविधि ही महत्वपूर्ण रही, अकबर की सार्वभौमिक शांति की नीति जहाँ संतन धारा की पृष्ठधारा से जुड़ी थी और सिक्खों सहित अन्य संतों का सम्मान करती थी, वहीं औरंगजेब की धारा इसके विपरीत थी। परिणामतः मराठों की प्रतिरोधक धारा की संकल्पना को पल्लिवित होने का एक अवसर प्राप्त हुआ। अकबर की राजपूत नीति से औरंगजेब के विचलन ने भी मराठों की समस्या को और ज्यादा गंभीर कर दिया, क्योंकि औरंगजेब जयसिंह की योजना को यदि नकार रहा था तो वह दक्षिण के लिए एक संभावना सम्पन्न योजना को नकार रहा था और वह ऐसा इसलिए भी कर रहा था कि उसे राजपूतों पर भी विश्वास नहीं था। वह न तो अकबर की तरह उन्हें अपने कमर की तलवार बनने देना चाह रहा था और न ही उन्हें महत्वपूर्ण सूबों एवं प्रशासकीय जिम्मेदारी से जोड़ना चाहता था, बल्कि उसने तो जसवंत सिंह की मृत्यु के बाद राठौरों के साथ जो नीति अपनाई उससे यही संकेत मिलता है कि शायद वह उन्हें अपने खालसा के क्षेत्र में तब्दील करना चाहता था। परिणामतः जो राजपूत मराठों के विरूद्ध औरंगजेब के लिये कारगर सिद्ध हो सकते थे, वो स्वयं भी विद्रोही हो गए और राजपूतों के व्रिदोही हो जाने से मुगलों की हिंदू जनमानस के बीच स्वीकृति का आधार और भी खिसक गया।[16] इसके फलस्वरूप मराठों की हिंदू धर्मोद्धार की ध्वनि को एक व्यापक फलक मिल गया। तात्पर्य कि औरंगजेब की विफलता दक्षिण और उत्तर के

बीच कोई सीमा रेखा नहीं तय करती। उत्तर में नीतियों के कारण उसे दक्षिण में विफलता मिली, दक्षिण नीतियों के कारण से उत्तर में मिली।

इस प्रकार हम पाते हैं कि जिस तरह से स्पेन का नासूर नेपोलियन के विनाश का कारण बना, उसी तरह दक्कन का नासूर औरंगजेब की विनाश का कारण बना। साम्राज्य विस्तार की अति महत्वाकांक्षा, शक्की स्वभाव और मराठों के साथ संधि न करने की जिद आदि ने औरंगजेब की दक्कन नीति को विफल बना दिया। सुदूर दक्कनी क्षेत्र में उसकी व्यस्तता का लाभ उठाकर जाट, सतनामी आदि ने विद्रोह किया एवं मुगल शक्ति व प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचाया।

संदर्भ सुची–

1. मजुमदार, राय चौधरी, दत्त : भारत का वृहत इतिहास (2); पृ0सं0–173
2. इमत्याज़ अहमद : मध्यकालीन भारत (8वीं से 18वीं शताब्दी) एक सर्वेक्षण; पृ0सं0– 80, 264
3. वही
4. सतीश चंद्र : मध्यकालीन भारत, (सल्तनत से मुगल काल तक) (1526–1761)
5. वी0ए0 स्मिथ : अकबर द ग्रेट मुगल
6. इमत्याज़ अहमद : मध्यकालीन भारत (8वीं से 18वीं शताब्दी) एक सर्वेक्षण; पृ0सं0– 265
7. वही
8. सतीश चंद्र : मध्यकालीन भारत, (सल्तनत से मुगल काल तक) (1526–1761), पृ0सं0– 204
9. वही
10. मोरलैण्ड : इंडिया फ्रॉम अकबर टू औरंगजेब
11. सतीश चंद्र : मध्यकालीन भारत, (सल्तनत से मुगल काल तक) (1526–1761), पृ0सं0– 210
12. सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब
13. वही
14. सतीश चंद्र : मध्यकालीन भारत, (सल्तनत से मुगल काल तक) (1526–1761), पृ0सं0– 358
15. इमत्याज़ अहमद : मध्यकालीन भारत (8वीं से 18वीं शताब्दी) एक सर्वेक्षण; पृ0सं0– 217, 219
16. मजुमदार, राय चौधरी, दत्त : भारत का वृहत इतिहास (2); पृ0सं0–219